महात्माओं का विज्ञान : सुने समझें और क्रिया में लें

ओम तत्सदात्मने नमः

यह बताइये कि यदि हम सब लोग अंधेरे में बैठकर दिया, बत्ती, लालटेन, सूरज, चन्द्रमा और बिजली की खूब बात करें, तो क्या अंधेरा भाग जाएगा? कब भागेगा? जब दीपक जलाएंगे। दीपक की बातें करते रहें– दीपक न जलाएं, कैसे अंधेरा जाएगा?

'निशि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई।'

खीर, मालपुआ, लड्डू, जलेबी, रसगुल्ला, मलाई की खूब बातें करें और उसमें हाथ न लगायें–खायें न उसे, तो क्या पेट भरेगा? खाने से ही पेट भरेगा।

इसी तरह यह साधन–भजन, ज्ञान–ध्यान की बातें करते रहने से कुछ होता नहीं। जब तक इसे क्रिया में नहीं ले लेते हैं, तब तक इसका परिणाम नहीं आता। यह साधना का जो विषय है, इसमें केवल थ्योरी (मौखिक ज्ञान) से काम नहीं चलता। प्रैक्टिकल (क्रियात्मक) करने का विषय है यह। व्यक्तिगत अपने करने का है। इसलिए सुनें, समझें और फिर करें। हर आदमी अपना – अपना करे।

कितने शास्त्रों में, गीता रामायण में, पुराणों में ज्ञान भरा पड़ा है। लोग पढ़ते हैं, सुनते–सुनाते हैं। बड़े–बड़े राम, कृष्ण आदि महापुरुष संसार का दुख दूर करने आए, तो क्या दुख संसार से चला गया? वास्तव में सुख–दुख दोनों साथ रहते हैं। सभी सुख चाहते हैं। दुख कोई नहीं चाहता है, फिर भी दुख रहता है, रहेगा। क्योंकि दुनिया सुख चाहती है। और सुख होने के लिए, दुख का होना ज़रूरी है। सुख,दुख के सापेक्ष है। इसलिए दुनिया में ये दोनों रहेंगे। हाँ सुख की चाह में मानव ने जो खोज की है, वह आध्यात्मिक–साधना के रूप में सामने आई। सुख और शांति का यही एक मार्ग है। लेकिन यह सफर लम्बा है, कठिन है।

''लम्बा मारग दूर घर, अगम पंथ बड़ि मार।''

लेकिन जो भी है, रास्ता तो चलने से ही तय होगा। यह जो कहना सुनना है, इसके साथ–साथ, साधन –पथ पर चल पड़ना ही मुख्य बात है।

हम उन ऋषियों–मुनियों की संतान हैं, जिन्होंने जीवन को सही अर्थों में जिया है, और हमें भी उसका रास्ता बताया है। हमारा धर्म बनता है कि हम उनके बताये हुए रास्ते पर चलें। उनका अनुसरण करके हम जीवन को सम्पूर्णता से जी सकते हैं। जीवन की संपूर्णता केवल शरीर के लिए जिन्दगी बिता देने में नहीं है। वास्तव में जीवन, इससे कुछ बड़ी चीज़ है। हमें विचार करना चाहिए कि हमारे पूर्वज–ऋषियों ने हमें जीवन जीने की जो शैली प्रदान की है, क्या हम उसके अनुसार चल रहे हैं? उन्होंनेभौतिक जीवन के साथ–साथ आध्यात्मिक जीवन को भी लिया है। बल्कि अध्यात्म को ही प्राथमिकता दी है। अनेक महापुरुष जन्म से ही विरक्त होते थे। किन्तु आध्यात्मिक उपलब्धि के बाद उन्होंने सृष्टि की प्रक्रिया में सहभागी होकर, संतानें भी पैदा कीं। यहीं चित्रकूट में अत्रि जी, माता अनसूया के साथ रहे। तो हमें सबसे ज़्यादा ध्यान इस बात पर देना होगा, कि हम शरीर के लिए दिनभर नौकरी–व्यापार, धंधा करते रहते हैं, तो फिर आत्मा के लिए भी कुछ समय निकालें। हम अपने जीवन का अधिकांश उपयोग शरीर के लिए ही करते हैं। सबेरे से शाम तक, रातो–दिन, आदमी जो भी करता है, सब कुछ शरीर के लिए करता है। इसी के सुख को सुख और दुख को दुख

मानता है। कुछ थोड़ा अपने मन के लिए भी कर लेता है। किन्तु खाना पीना, सोना, जागना, धंधा करना सभी कुछ शरीर के लिए करता रहता है। जीवात्मा अपने लिए कुछ भी नहीं करता। उसे आत्मकल्याण के लिए भी कुछ करना चाहिए। जैसे शरीर भोजन के बिना नहीं चल सकेगा, वैसे ही आत्मा को शान्ति चाहिए। इसके लिए आवश्यक है, कि शरीर की जरूरतें पूरी करने के साथ–साथ, हमें अपने लिए, अपनी आत्मा के लिए भी कुछ करना चाहिए। आप लोग जो भी कुछ करते हैं, उसे करते रहें। उसे शरीर के लिए, शरीर के संबधियों के लिए, करते रहें। सारा दिन काम में बिताने के बाद, रात में बिस्तर में जाते समय विचार करें, कि दिन भर का समय हमने क्या केवल शरीर के लिए ही नहीं बिताया? क्या आत्मा के प्रति भी हमारा कोई कर्तव्य है? वास्तव में विचार करने पर स्वयं निर्णय मिलेगा, कि आत्मिक सुख के लिए भी हमें कुछ करना चाहिए। प्रारम्भ में केवल इतना ही किया जाय, कि सोने के पहले बिस्तर पर ही बैठकर, थोड़ी देर के लिए अपने इष्ट का स्मरण करें, दो चार मिनट भगवान का नाम लें। फिर हृदय में ही भगवान के सामने विनम्रभाव से प्रस्तुत होकर प्रार्थना करें, कि हे प्रभु! मैंने आपकी प्रेरणा के अनुसार, दिन भर सांसारिक कार्यों में बिताया, अब आपके सामने हाज़िर हूँ। मैं अज्ञान हूँ, मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे, और मुझे सही दिशा में चलाते रहेंगे। सबेरे उठकर सर्वप्रथम अपने इष्ट का ही ध्यान और प्रार्थना करें। प्रतिदिन इतना नियम से करते रहने पर, आत्मा को खूराक मिलने लगेगी। भजन का मार्ग प्रशस्त होगा। रोजाना की हाजिरी का इस लाइन में बड़ा महत्व है। धीरे–धीरे, ज्यों–ज्यों अनुराग बढ़ेगा, प्रगति होगी। किसी संत सद्गुरू के रूप में, भगवान, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन करने लगेंगे। फिर तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी।

ऐसा कोई न सोचे कि यह सब हमारे लिए नहीं है, ऐसा न समझें। यह सबके लिए है,सब लोग कर सकते हैं। माइयां भी कर सकती हैं, पुरुष भी कर सकते हैं। छोटे लोग भी कर सकते हैं, बड़े भी कर सकते हैं। गृहस्थ भी कर सकते हैं, विरक्त भी कर सकते हैं। भगवान सब का है वह सब के लिए कम्पलसरी(अनिवार्य) है। ईश्वर में सबका बराबर अधिकार है। गृहस्थ लोग यह कह सकते हैं कि यह सब साधन भजन तो उनके लिए है, जो भजनानंदी महात्मा लोग हैं, साधक हैं। हम लोग इतना बड़ा ज्ञान–ध्यान का काम कैसे कर सकते हैं? लेकिन ऐसा नहीं–यह सबके लिए है, सबकर सकते हैं। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है, भगवान तो हमारे तुम्हारे सबके अन्दर बैठी हुई कोई ऐसी एनर्जी(सत्ता) है जो दिखाई नहीं पड़ती लेकिन सर्वत्र रहती है। तो हमारा आपका कर्तव्य हो जाता है कि काम से फुरसत होने पर जब भी मौका मिले, उसे याद करें। तो सबसे पहले अपना एक इष्ट निश्चित कर लेना चाहिए।

यथाऽभिमतध्यानाद्वा।

हर आदमी का अपना एक इष्ट होता है–होना चाहिए। इष्ट उसे कहते हैं कि जो नाना प्रकार के अनिष्टों को, दिक्कतों को, हर प्रकार के हमारे कष्टों को आपत्तियों को नष्ट करने में सर्मथ होता है। उसको इष्ट कहते हैं। वह तुम्हारा पूज्य होगा, तुम्हारा देवता होगा और उसके प्रति तुम्हारी अधिकतम श्रद्धा होनी चाहिए। यह अब आप निश्चित कर सकते हैं कि आप की श्रद्धा सबसे अधिक किसमें है उनमें राम, शिव, हनुमान, देवी, देवता, माता, पिता अथवा गुरु कोई भी हो सकते हैं। यह आपको खुद निश्चित करना पड़ेगा। जिसमें सबसे ज्यादा श्रद्धा और प्रेम हो, जिसे आप सबसे ज्यादा मानते हों वही आपका इष्ट है। और फिर इष्ट को ऐसे भी समझ लीजिये जैसे बड़े–बड़े सेठ–व्यापारी होते हैं,उनसे छोटे व्यापारी पैसा लाते हैं, व्यापार करते हैं और फिर चुकता कर देते हैं। ऐसे ही बड़े साहूकार या व्योहर का

नाम इष्ट है। तो जो नन्हा सा प्रेमी साधक है उसका सबसे पहला कर्तव्य है कि वो अपना इष्ट निश्चित करे, और अपनी उस नन्ही सी श्रद्धा को इधर–उधर के अन्य देवी देवताओं और अधूरी मान्यताओं में समर्पित न करे। आप जितना भी श्रद्धा रूपी,प्रेम रूपी अपना भक्तिभाव ईश्वर को दान करना चाहते हैं,वह अपने इष्ट को दान करिये।

एकै साधे सब सधै,सब साधे सब जाय।

तो जब आप अपना इष्ट निश्चित कर लेंगे और जब दिनभर के काम से निवृत्त होकर शाम को घर आते हैं तो समय निकालकर बैठिए और अपने इष्ट को अपने हृदय में बैठाइये दूसरा और कोई स्थान इष्ट का नहीं है। अगर आप बाहर देखेंगे तो आपके अन्दर बीमारी घुस जायगी। आप उसको टाल नहीं सकते आदमी के पास सबसे महत्वपूर्ण हृदय है –

तेरे पूजन को भगवान,
बना मन मन्दिर आलीशान।

इससे बड़ा आलीशान कोई मन्दिर नहीं है ईश्वर के लिए। तो बैठ जाइये शान्ति से, और अपने इष्ट को हृदय में देखिए–बार बार देखिए। चित्र बनवा लीजिये और देखिये। देखते–देखते उसकी आकृति जितनी है, अपने अन्तःकरण में अपने ब्रेन (मस्तिष्क) में खीच लीजिये। जब भी आपके ऊपर आपत्ति आती है, दिक्कत आती है, परेशानी आती है तो उनके स्वरूप को स्मरण करो। वह स्वरूप चित्त में खड़ा हो जाना चाहिए। ऐसा जो इष्ट है वह आपकी हमेशा मदद करेगा।

तो बैठना चाहिए रोज नियम से। चाहे चारपाई पर ही बैठिए, चाहे नीचे जमीन पर आसन बिछाकर बैठिए–जैसी जिसकी रुचि हो। यह साधक के ऊपर है। शान्ति से आंख बन्द करके बैठ जाइये और हृदय में इष्ट को बैठाइए। पहले आसन लगाइये हृदय में इष्ट के लिए और उन्हें उस पर बैठाइए। फिर नख से शिख तक पूरा देखिए। उनके स्वरूप को सांगोपांग हृदय में देखिए। अगर राम को लेते हैं तो देखिए–नीला वर्ण है, मुकुट पहने हुए हैं, धनुष कन्धे में दिखाई पड़ता है, पीताम्बर पहने हैं–ऐसे देखते चले जाओ। अगर देवी की उपासना करते हो तो देवी का रूप हृदय में देखिए। अगर गुरु को लेते हो तो गुरु जैसे हों वैसा ही चित्र मन में खड़ा करो। उन्हें हृदय में बैठाकर ठीक से देखते रहो। प्रणाम कर लो और प्रार्थना करो–हे भगवन ! मेरे इस शरीर को रथ बना लो, इन्द्रियों को घोड़े, मन को लगाम और बुद्धि को सारथी बना लो। आप इसमे आत्मारूप से रथी होकर बैठ जाओ। मेरे मन में जो अनुराग है उसे अर्जुन बनाओ और चारो तरफ जो करम दल है यह कौरवों का, इसे नष्ट करने में आप समर्थ होइए। ऐसी प्रार्थना करके फिर प्रणाम कर लो। अपनी हाजिरी दे लो। हाजिर आदमी कभी नही मारा जाता। गैरहाजिर आदमी को सजा मिलती है, और सदा के लिए रिजेक्ट (खारिज) हो जाता है। इस प्रकार अपने इष्ट के यहाँ रोज सुबह–शाम नियमित हाजिरी दो। हाँ इसमे दिक्कतें आ सकती हैं। कभी विघ्न आ सकते हैं, दूसरे प्रकार के संकल्प आ सकते हैं। तो इसे आप अपनी परीक्षा मानिए। इससे घबराना नहीं है। अपने नियम से हटना नहीं है। इसे छोड़ नहीं देना है निरंतर इसमें लगे रहिए। लगातर करने से आपको आदत बन जाएगी–हैविट हो जाएगी तो फिर इष्टदेव आपके हृदय में विराजमान हो जाएंगे। इससे आपको बड़ा लाभ मिल जायगा।

भजन का क्रम, जब एक बार प्रारम्भ होता है, तो फिर टूटता नहीं। उसमें बाधाएं तो आती हैं, पर उसका रस जब जीवात्मा को मिल जाता है, तो बार–बार उसकी ओर आएगा।

हाँ, इसमें साधक को सावधान और दृढ़ रहना चाहिए। क्योंकि माया के क्षेत्र से जब कोई भी ईश्वर के क्षेत्र में जाता है, तो माया को यह अच्छा नहीं लगता। वह उसे अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करती है। तरह–तरह की बाधाएं कष्ट या प्रलोभन, उसे भजन के मार्ग से हटाने को, आ खड़े होते हैं। ऐसे में साधक को भगवान से प्रार्थना करते रहना चाहिए। और माया से भी हाथ जोड़कर कहें, कि वह भी अनुकूल रहे। कभी–कभी कठिन परीक्षा हो जाती है। यदि साधक सबको पार करता हुआ आगे बढ़ता गया, तो लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जाता है। हॉ, यह जरूरी है कि भजन–साधन के रास्ते का ज्ञान भली–भाँति कर लिया जाय। इसके लिए सन्त सद्गुरू के पास जिज्ञासु भाव से जाना चाहिए। जो इस मार्ग पर चलकर लक्ष्य तक पहुँचा है वही बतायेगा। इसलिए अगर सही बताने वाला मिल जाय तो इसे अपना अहोभाग्य मानना चाहिए। इस रास्ते में भटकाव की संभावना बहुत ज्यादा रहती है। हमारे शास्त्रों में गीता–रामायण में, अध्यात्मज्ञान भरपूर भरा है। लेकिन इसे बाहरी समाज की या समूह की चीज बना दिया गया है। जबकि अध्यात्म बिल्कुल एक व्यक्तिगत चीज़ है–साधना, समूह में या मंडल में नहीं होती। एक आदमी अपने में साधना करके पूर्णता पा ले, तो फिर उससे प्रेरणा लेकर दूसरे भी करें, यह नियम है।

तुलसी दास ने रामायण का नाम राम चरित मानस रखा है। उनके साधना की थीसिस (शोधग्रन्थ) है यह मानस। रामचरितमानस का मतलब है– राम के चरित मन से। देखिये, भगवान तो देशकाल से बाधित है नहीं। राम त्रेता में हुए, आज नहीं हैं। जब वे थे, उन्होंने सबका कल्याण किया। आज राम नही हैं तो कौन कल्याण करेगा? अब जो राम आज भी है, वही हमारा कल्याण कर सकता है। राम का देश–काल अबाधित रूप आत्मा का है। उसी को राम कहते हैं,जो परात्पर आत्मा सब में रम रहा है।

राम ब्रह्म चिनमय अविनाशी। सर्व रहित सब उर पुरबासी।।

ऐसा जो परमात्मा राम घट–घट में बैठा है वह कल्याण कर सकता है। वह कल्याण स्वरूप ळें उससे भेंट हो तो कल्याण हो। इसका जो तरीका है,वह है मानस में। उसे समझना चाहिए।

राम कहते हैं–

''अवध सरिस मोहि प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।''

शरीर ही अवध है। दश इन्द्रियों में अनुगत चेतन का प्रतिबिम्ब दशरथ है। भक्ति कौशिल्या है, कर्म कैकेयी, सुमति सुमित्रा, ज्ञान रूपी राम, भाव भरत, विवेक लक्ष्मण, सत्य शत्रुघन है। फिर विश्वास रूपी विश्वामित्र के आने पर, तर्क रूपी ताड़का को मारकर, आगे जनकपुर में सीता को वरण करते हैं। मोह रावण है। क्रोध कुंभकर्ण, लोभ नारांतक, काम–मेघनाद और मन के सारे विकार राक्षस हैं। वैराग्य रूपी हनुमान, सुरति– सुग्रीव, अनुराग अंगद, यम–नियम नील, नल आदि वानरी सेना के द्वारा मोह रावण का कुटुंब सहित विनाश करके, जीव रूपी विभीषण का कल्याण करते हैं–उसे राजा बना देते हैं। तो यह सब असली रामायण अपने अंदर की है। बाहर के कथानकों में तुलसीदास ने, अपने भीतर की साधना–प्रक्रिया को अभिव्यक्त किया है। मानस की अनुभूतियों को राम–चरित के साथ जोड़कर कहा है। सभी ऋषियों ने, संतो ने इसी प्रकार अपने अनुभव कहे हैं। आज लोग बाहर की बात ले लेते हैं, उसके मूल तत्व को नहीं पकड़ते। वस्तुतः असली साधन–सत्संग अपने अंतःकरण का है, बाहर का नहीं। हॉ प्रारम्भ में कथा– कीर्तन का महत्व है। जब तक जिसे सही साधना–प्रक्रिया का बोध नहीं मिल जाता, तब तक वह ऊपर की बातों में फंसा रहता है। जैसे छोटी बच्चियाँ, गुड़िया–गुड्डा का खेल खेलती हैं। बड़ी हो गईं, और शादी

होने पर जब ससुराल में आती हैं, तो फिर गुड्डा–गुड़िया वहीं पड़े रह जाते हैं। ऐसे ही बाहरी कथा–सत्संग का महत्व है। एक प्रकार से इस पढ़ाई की यह प्राइमरी क्लास (प्राथमिक कक्षा) है। इसे करना अच्छा तो है, किन्तु इसी को पकड़ कर बैठ जाना बुरी बात है। कोई जीवन भर प्राइमरी ही पढ़ता रहे, तो आप क्या कहेंगे? साधना की भी कक्षाएं हैं। एक–एक कर पास करना होगा, और तभी एक दिन इसमें मास्टर डिग्री (निष्णात उपाधि) ले सकेंगे।

हम जब रामायण या महाभारत सुनते हैं या पढते हैं, तो हमारे मन में बाहर की घटनाओं के चित्र बनते हैं। यह ढंग गलत है। इन सारी घटनाओं को, सारे पात्रों को, सारे प्रसंगों को, अपने अन्तर्जगत में ढालकर लेना चाहिए। भला बताइये, हमारे तत्वदर्शी ऋषि–मुनि, जो इस संसार को मिथ्या जानते थे, वे क्यों फिर संसार की घटनाएं लिखते फिरेंगे? ऋषियों ने अपने साधन–पथ का व्याख्यान, इन घटनाओं के माध्यम से किया है। हमारे तुम्हारे लिए अलौकिक बातों को लौकिक तरीके से लिखा है। इसलिए एक साधक को इन कथाओं का पठन–पाठन यथार्थ के धरातल पर करना चाहिए। रामचरित को अपने मानस में ले लेना चाहिए।

अब देखिए, राम अगर चाहते तो पंचवटी से लंका–विजय कर सकते थे। रावण का समूल विनाश, किष्किंधा में रहकर ही कर सकते थे। समुद्र के इस पार से भी हो सकता था। लेकिन देखिए कितनी मेहनत करनी पड़ी। बन्दरों को लेना पड़ा, सेतु बनाना पड़ा और वहां जाना पड़ा–लंका तक। तो यह सब कथानक बनाये गये हैं। मूलतः यह वहां का किस्सा नहीं है–यह हमारे अन्तःकरण की बात है। यह संसार समुद्र है। इसके पार जाने पर ही वे दुष्ट मर सकते हैं। अगर हम अन्तःकरण में प्रवेश नहीं कर सकते–संसार में बहिर्मुख ही बने रहेंगे–तब तक हम इन काम, क्रोध आदि मन के विकारों का पता नही लगा सकते। तो इसके लिए संयम रूपी सेतु है। विषयों से इन्द्रियों को विरत रखना–इन्द्रियों का संयम करना–यह सेतु है। जब ऐसा संयमरूपी सेतु बन जायगा तब इसके पार जायेंगे। जैसे राम ने सेतु बनाया और पार गये, फिर शंकर जी की स्थापना किया तब अभियान हुआ। तो साधन भजन के लिए ये दोनों बातें जरूरी हैं। इन्द्रियों का संयम करिये और अपने इष्ट देव को हृदय में पधराइए। जब संयम आ जायगा और अपने इष्टदेव को ठीक से हृदय में बैठा पाएंगें और जब वह खुश हो जाएंगे, तब समझो ठीक है। आपको देखेंगे, टटोलेंगे, लेंगे और आप बिल्कुल नहीं हटेंगे, तो फिर आपको महान लाभ हो सकता है। यम नियम ही नल–नील हैं। संयमरूपी सेतु बनाना है, तो यम–नियमरूपी नल–नील की मदद लेनी ही पड़ेगी।

आदमी नौकरी करता है, बिजनेस (व्यापार) करता है,आमदनी के लिए और भजन करता है शान्ति के लिए,कल्याण के लिए, ईश्वर के लिए। और अगर छोड़ देता है,अनियमित हो जाता है, तो गैरहाजिर आदमी–जो नौकरी में है,उसको तनखा मिलना तो दूर की बात है–नौकरी से भी निकाला जा सकता है। अगर बिजनेस में ढीलापन आया तो लाभ के बजाय उसका व्यापार चौपट हो जाता है। ठीक यही हालत इसमे भी है। इसलिए नियम से रोज सुबह– शाम बैठें। अगर कोई बाधा आती है, दिक्कत आती है तो उसे अच्छा मानना चाहिए। समझना चाहिए कि हम भगवान के भजन में, ध्यान में लगे हुए हैं, आगे बढ रहे हैं, इसीलिए ये विघ्न आ रहे हैं। हमारी कसौटी हो रही है, ऐसा मानकर निरंतर लगे रहिए। तो फिर ये विघ्न धीरे–धीरे शान्त हो जाते हैं। जिस प्रकार नौकरी में लगातार हाजिर रहने वाला आदमी वेतन पाता रहता है, उसी प्रकार नियम से इसमें लगे रहेंगे तो शान्तिरूपी वेतन मिलता रहेगा। और जैसे नौकरी–पेशा आदमी, बहुत समय तक सर्विस करने के बाद रिटायर

(सेवानिवृत्त) होने पर पेंशन पाता है वैसे ही कल्याणरूपी पेंशन आपको मिलेगी। इसलिए नियम न टूटना चाहिए।

दूसरी बात जो सबसे महत्वपूर्ण है, वह यह है कि इस रास्ते में बिना मार्ग दर्शक के, भूल–भटक जाओगे। इसलिए गुरु का आश्रय बहुत जरूरी है।

मानस में सबसे प्रमुख है– गुरु की बंदना। उनके चरणों का, चरणों के नख का स्मरण करके, उनकी चरण–रज की वंदना से मानस की शुरूआत हुई है।

बंदउं गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचिसुवास सरसअनुरागा।।

– – – –

श्रीगुरू पद नख मनिगन जोती।।
सुमरित दिव्य दृष्टि हिय होती।।

– – – –

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिय दृग दोष विभंजन।।

तो मानस की प्रवेशिका के पहले जो हमारा गाइड है, मार्गदर्शक है अंतःकरण का, उसका स्मरण कर लेना, उसका वंदन कर लेना ही बड़ी बात है। गोस्वामी जी यह बताना चाहते हैं कि आध्यामिक साधना की पढ़ाई, सद्गुरु के बिना नहीं हो सकती । इसलिए उन्होने मंगलाचरण में बड़ी श्रद्धा के साथ गुरुवंदना की है, और गुरु को शंकर स्वरूप कहा है–

वंदे बोधमयं नित्यं गुरु शंकर रूपिणम्।
यमाश्रितोऽहि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वंद्यते।।

उन्होनें गुरु को साक्षात् भगवान माना है–

वंदउं गुरु पदकंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर।।

आगे फिर वंदना के क्रम में सतसंग की और नाम की महिमा, सती की कथा, नारद का प्रसंग और फिर मनु सतरूपा का प्रसंग आता है। आजकल बड़ी चर्चा रहती है– कि ये कुछ लोग ब्राह्मण वगैरह मनुवादी हैं। तो ये गीता, रामायण, भागवत, पुराण सब ब्राह्मण ग्रंथ हैं। ये सब साधु या धर्मग्रंथ हैं। ऐसी परंपरायें हैं इनमें, कि जो लोग इसमें भाग लिये या जिनका विशेष रूप से इन ग्रंथों में वर्णन है, उनका बड़ा आदर रहा है समाज में। और जिनका नहीं हुआ, जो निम्न श्रेणी के माने गये, उनको आज भी लोग अच्छा नहीं समझते। वैसे अब बोलने का मौका मिला है लोगों को। और यह समाज को बदलने के लिये ठीक भी है, लेकिन लोग उसे वाद में ले लेते हैं–जातिवाद में ले लेते हैं। सही एडजस्टिंग(समायोजन) ऊपर वाले लोग नहीं कर पाते, और झगड़ा पैदा कर देते हैं। अगर इसको अध्यात्म में ले लिया जाय तो इससे समाज का बड़ा काम यह होगा, कि भेद भाव नहीं रहेगा क्योंकि आत्मा के स्तर पर सब समान हैं। अगर लोगों की समझ में यह बात आ जाय, तो बड़ा लाभ होगा इससे। जातिवाद समाप्त होगा, इससे रूढ़िवाद समाप्त होगा। और इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि जो तमाम लोग मारे जाते हैं– आपस के झगड़ों में, वह संघर्ष और द्वेष

रुकेगा। धर्म के नाम पर लोग मर जाते हैं, कट जाते हैं। फिर इस तरह से तमाम धर्मों की उत्पत्ति होती है। वितंडावाद तैयार होता है और सही धर्म लुप्तप्राय हो जाता है। धर्म के विषय में, मज़हब के विषय में, सम्प्रदाय के विषय में, अगर विवाद उठा तो झगड़ा ज़रूर खड़ा हो जाता है। और फिर जो धर्म का मूल सिद्धान्त है, उसको ले डूबता है यह झगड़ा। हर बात में झगड़े का रूप आ जाता है। इसलिए धर्म या मज़हब को, अगर झगड़े से बचाना है, तो इसके लिए भी बड़ी भारी आवश्यकता है, कि इसे अध्यात्म में लेना चाहिए। समाज में शान्ति लाने का यही एक तरीका है, दूसरा कोई तरीका नहीं है। हम उन महानुभावों से एक बात कहते हैं, जो बहुत बड़ी आस्था रखते हैं भगवान में, और बहुत आस्था रखते हैं धर्म में, कि उनको भी थोड़ा सोचना चाहिए, कि हम अलग–अलग न मानकर एक ही भगवान मानें, एक ही धर्म मानें। एक ही जाति – मानव जाति मान लें, तो यह विवाद खतम हो जाय। विवाद तो केवल बाहर की रूढ़िगत मान्यताओं के कारण होते हैं। आत्मिकस्तर पर सब एक हैं। इसलिए एक ही मज़हब मान लें, एक है परमात्मा, यह सब लोग मानलें। तो बात जहाँ की तहाँ है–कोई कहता है–राम लक्ष्मण दशरथ, कोई कहता है ईशु तेरी रहमत, कोई कहता है अल्ला तेरी कुदरत। है सब बराबर। उसमें कोई अन्तर नहीं है। खुदा या भगवान तो एक ही है। हिन्दू कहता है ईश्वर अविनाशी, व्यापक, सर्वशक्तिमान और दयालु है। मुसलमान उसे कयूम, अजीम, रहीम, और हकीम कहता है। हिन्दू उसे अर्न्तयामी कहता है, मुस्लिम अलीम कहता है। हिन्दू जिसे पाप–पुण्य कहता है, उसी को वहाँ बदी और नेकी कहा जाता है। बात तो एक ही है, केवल भाषा अलग है। आला ताला वाले भी उसी तरह खुदा को मानते हैं, जैसे हिन्दू लोग भगवान को मानते हैं। हिन्दू भी भगवान से दया की भीख मांगते रहते हैं, और मुसलमान भी दिन रात खुदा से रहमत मांगते रहते हैं। हे हे आला ताला, रहमाने मुसल्लम! मुझे तुम निहाल कर दो, मेरे ऊपर रहम कर दो। मुझे अपना प्यारा बना लो। और यही सब हिन्दू लोग भी करते हैं। दूसरा तो कुछ करते नहीं। भाषा का केवल अन्तर है, भाव तो वही है। इसी तरह से ईसामसीह वाले करते होंगे। इसी तरह से ताओ या कन्फ्यूसियस या बौद्ध या जैन इन सबका भी यही तरीका है। तो यह सब विवाद सरलतापूर्वक हल हो सकते हैं, अगर बाहर की रूढ़िगत बातों को छोड़कर गम्भीरता से विचार किया जाय और समाज में एक यह अन्तर्जगतीय तरीका आ जाय, आध्यात्मिक तरीका आ जाय। लेकिन हम मानते हैं कि यह आ नहीं सकता। आ क्यों नहीं सकता? क्योंकि जब दो आदमियों के विचार परस्पर नहीं मिलते, तो इतने बड़े समाज को कैसे एक विचार का बना सकते हैं? लेकिन तो भी प्रयासरत रहना ही चाहिए।

इसलिए यदि मानस को सही मानस के अर्थ में लेना है, सही मानस को ग्राह्य बनाना है, सही मानस में डुबकी लगाना है, तो गोस्वामी जी ने लिखा है कि कैसे मानस बना है? फिर कैसे इससे कथा का प्रवाह चला है? कहाँ होकर चला, कैसे इसमें अवगाहन हो, मानस के अवगाहन में क्या बाधाएं हैं– यह सब तुम लोगों ने पढ़ा होगा। उसमें समझाने का तरीका बहुत बढ़िया है। पूरी राम कथा को उन्होंने आध्यात्मिक रूपरेखा में लेकर, जन–जन के अंदर की कहानी बना दिया है। मानस बना दिया है। शंकर जी ने पहले से इसकी रचना मन में कर रखी है–

रचिमहेश निजमानसराखा।

इसलिए इसका नाम राम चरित मानस रखा गया है–

ताते रामचरित मानस वर।
धरेउनाम हिय हेरि हरषि हर।।

शंकर संत को कहते हैं। यह मानस कथा, यह थ्योरी, यह अध्यात्म विज्ञान, यह साधनात्मक संरचना मानस की – यह संतों की देन है।

अब देखिए तुलसीदास के अन्दर कैसे बना, यह मानस–

'सुमति भूमि थल हृदय अगाधू ।
वेद पुरान उदधि घन साधू ।।
बरसहिं राम सुजस वर वारी ।
मधुर मनोहर मंगल कारी।।'

....

मेधा महि गत सो जल पावन ।
सकिलि स्रवन मग चलेउ सुहावन ।।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना ।
सुखद सीत रुचि चारु चिराना ।।

तो भगवान की महिमा रूपी जल है। वह परमात्मज्ञान, जो संतों के द्वारा, शास्त्रों के द्वारा सुना गया, सुमति ने उसे धारण कर लिया। हृदय में उसे स्थायित्व मिल गया। अन्तःकरण में ईश्वर की सही एडजस्टिंग (समायोजना) हो गई। ऐसे–ऐसे यह मानस का रूप आ गया गोस्वामी जी में। तब फिर, उस मानस से यह कथा निकली है–

अस मानस मानस चख चाही।
भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही ।।
भयउ हृदय आनंद उछाहू ।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ।।
चली सुभग कविता सरिता सो।
राम सीय जस जल भरिता सो।।

तो इस तरह से इस कविता सरिता का मूल है, मानस।

'मानस मूल मिली सुरसरिहीं।'

पहले मानस बना,अपने में अनुभूति मिल गई। जब काम पूरा हो गया, मस्ती आ गई, तब यह कथा का प्रवाह चला। राम चरित के रूप में बाहर आ गई, वही मानस की अनुभूति। जानते हो, जब पचहत्तर साल के हो गये तुलसीदास तब लिखी रामायण। इतने दिन लगे तब मानस बना। अध्यात्म का गूढ़ रहस्य पहले नहीं समझ में आया था। जब साधना पूरी हो गयी तब यह 'कथा रामकै गूढ़', अर्थात आध्यात्मिक रहस्य की बातें समझ पाये, तब यह रचना हुई। तो यह मानस की बातें हैं, मानस में लेना पड़ेगा। मानस के लिए है यह मानस–

जिन्ह यहि वारि न मानस धोए ।
ते कायर कलिकाल बिगोए ।।

इस प्रकार बाहर कोई अर्थ गोस्वामी जी ने छोड़ा नहीं है। बाहर अगर छोड़ा है, तो केवल उनके लिए छोड़ा है, जिनके पास बारीक बुद्धि नहीं है। जो हठी हैं, और जो जिद्दी हैं। जो समझते नहीं हैं। जो लालची हैं। स्वभाव के वश में हो गए हैं। इच्छा का त्याग नहीं कर सकते। ईश्वर को समर्पण नहीं कर सकते। ऐसे लोग जो हैं, अर्थ का अनर्थ करने के

लिये, शब्दों को तोड़–मरोड़ कर पेश करके, गलत बता देते हैं। इसलिए जो अंध विश्वास है, जो सच्चाई के सहारे, बगली–बगली रूढ़िवाद रह गया है, गलतवाद बैठ गया है, झूठवाद बन गया है–आध्यात्मिक जगत के इस कलंक को धोने का यही एक उपाय है, कि हर ऐसी पुस्तक का मानस ट्रांसलेशन (रूपान्तर) किया जाय। अगर कोई कविता स्थूल जगत की है, तो स्थूल जगत में ली जाय। अगर कोई कविता किसी ऋषि की है तो उसे अन्तर्जगत से लिया जाय। बाहर से न लिया जाय। इस तरह से अगर सदुपयोग किया जाय, तो समाज पीसफुल (शान्तिपूर्ण) बन सकती है। सबको शान्ति आ सकती है। और जो कल्पना में सतयुग और क्या–क्या होते थे, वह सब हो जाय। लेकिन यह रूढ़ि दुनिया से जा नहीं सकती, समाज में रहेगी। इसलिए हम कहते हैं कि यह परसनल (व्यक्तिगत) विषय है। यह भक्ति–साधना करने का विषय व्यक्तिगत है। यह व्यक्तियों के समूह में नहीं हो सकता । ऐसा सम्भव नहीं है कि हमने साधना पूरी कर लिया और सबको करा दिया जाय। फिर प्लाटून बन जाय, फिर कम्पनी बन जाय, बटालियन बन जाय फिर दुनिया बन जाय। ऐसे नहीं होता। यह बहुत मालीक्यूल (सूक्ष्म) विषय है– किसी–किसी की समझ में आता है। और समाज ऐसी है, कि हर आदमी बराबर मानस में ट्रांसलेशन नहीं कर सकता। हाँ, शरीर सबके पास बराबर दिखाई पड़ते हैं, सब एक साथ खड़े हो सकते हैं, पैर बढ़ा सकते हैं। किसी चीज़ को एक साथ कर सकते हैं। राइफल चला सकते हैं, एक साथ। कार चला सकते हैं, एक साथ। लेकिन यह मन इतना मालीक्यूल (बारीक) है, कि उसको शोधन करने के लिये तो व्यक्तिगत ही चलना पड़ेगा। और व्यक्तिगत अगर हो जाता है, तो उसका जो तौर तरीका है– बताने का, वह बाहर नहीं हो सकता। अगर बाहर हम लेंगे तो फिर उसका रिएक्शन (प्रतिक्रिया) होता चला जायेगा और उतनी ही बीमारी बढ़ती चली जायेगी।

दुनियाँ के विविध धर्मों में झगड़े इसलिए होते हैं, कि लोग धर्म को बाहरी जगत की बात मान लेते हैं। बाहर की दुनिया देश–काल–बाधित है, इसलिए उसमें विषमताएं रहती हैं। रूचियों में भिन्नता होती है। खानपान, रहन–सहन, भाषा–बोली में विभिन्नता रहती है। तो फिर बाहर के धर्मों में भी भिन्नता होगी। धर्म को बाहर की चीज़ मानेंगे–बाहर से लेंगे, तो विभेद होंगे ही। और मतभेद होने पर, झगड़े होते हैं। धर्म का सही माने में तात्पर्य अध्यात्म से है, जो सबमें समान होता है। अध्यात्म देश–काल अबाधित होता है। वह हमारे तुम्हारे सबके अन्तःकरण की बात है। अन्तःकरण के स्तर पर सबमें समानता रहती है। वहाँ गोरे और काले का भेद नहीं होता। जाति और भाषा का भेद इस स्तर पर नहीं होता– बाहर की तरह। बाहर समाज में राम, खुदा, ईश्वर, ताओ, ईशु आदि के भेद हैं, पर अन्दर सबकी आत्मा एक है। जैसे सारे जल–स्रोत समुद्र में जाकर एक हो जाते हैं। वैसे ही सबका परमात्मा वही एक है। परमात्मा अनेक नहीं है–एक ही है,

हर देश में तू, हर वेश में तू, तेरे नाम अनेक तू एक ही है।

और वह परमात्मा सब के अन्दर बैठा है–

ईश्वरः सर्वभूतानाम् हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

इसलिए उस परमात्मा को पाने के लिए अपने अन्दर–अपने मानस में झांकना पड़ेगा। शरीर के बाहर की ओर भेद ही भेद हैं। अन्दर की ओर अभेद होने का क्रम है। सभी के शरीर गोरे, काले, पीले, सब उन्हीं पाँच तत्वों से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश से बने हैं। सबके मन इन्द्रियों में, एक जैसे संवेदन होते हैं। सुख–दुख की अनुभूतियाँ सबको एक सी होती है। इसलिए अध्यात्म ही समाज में एकता लाने का एक मात्र रास्ता है। अध्यात्म का अर्थ अपने अन्दर की दुनिया से है, बाहर की बातों से नहीं।

यह सब जो आज तमाम रुढियाँ बन गयी हैं धर्म के नाम पर, यह सब व्यर्थ की बातें हैं। हमारे ऋषि–मुनियों ने अन्दर के रहस्यों को, प्रतीक रूप में बाहर दर्शाया है। रामायण, महाभारत अथवा उपनिषदों की कथायें, उनके आध्यात्मिक शोध ग्रंथ हैं। जिनमें उन्होंने अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को कथाओं, पात्रों घटनाओं के रूप में बाहर व्यक्त किया है। बाद में वे रूढ़ि बन गईं। वास्तविकता यह है, कि साधक को अन्दर की दुनिया से ही अर्थ ग्रहण करना चाहिए। अनेक महात्माओं ने अपने–अपने ढंग से, बाहर समझाने की चेष्टा की है। अन्यथा अनुभव की बात अभिव्यक्ति में कैसे आये, गूंगे के गुड़ की भांति। सोई जानै जो पावे।

अब जैसे कबीर ने षटचक्र बताये हैं। यह अन्तःकरण की स्थितियां हैं– मूलाधार से सहस्रार तक। लोग विष्णु की उपासना करते हैं। कहते हैं ये क्षीर सागर में शेष नाग पर सोते हैं। लक्ष्मी जी उनके चरण दबाती हैं। शंकर जी कैलाश में शक्ति (पार्वती) के साथ विराजते हैं, उनका रंग– ढंग ही विचित्र है। असल में ये सब अन्दर की बातें हैं। बाहर ऐसे प्रतीकात्मक खाका बताया गया और फिर रूढ़ि बन गई। चित्र बन गये, कलेण्डर में छाप दिया, मूर्ति बन गई, मंदिर बन गये। हिन्दुस्तान में परंपरा के प्रति आदर की भावना इतनी अधिक रही है, कि धीरे–धीरे लोग अन्ध विश्वासी हो गये, रूढ़िवादी बन गये। महात्माओं का विज्ञान दुनियावी रूढ़ियों से अलग है। वे बाहर को अन्दर में घटाते चलते हैं। तुलसीदास ने कहा है–

'सकलदृश्य निज उदर मेलि, सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरि पद अनुभवै परमसुख अतिसय द्वैत वियोगी ।।'

यह तरीका है। अपने में ही खोजना है, अपने में ही पाना है। इसलिए पहली बात है कि बहिर्मुखता छोडें, अन्तर्मुखी बने और आत्मा में ही परमात्मा की धारणा दृढ़ करें। फिर भजन करते–करते जब उसकी लीला समझ में आने लगती है–जब कम्युनिकेशन (संचार) सही हो जाता है, तो सब उत्तर मिलते रहते हैं। महात्माओं की पहचान बाहर से नहीं होती। जब हम अनसूया में थे, महाराज जी की सेवा में। उस समय तक वहां और कोई नहीं था,बस हम दोनों थे। तो एक दिन बैठे ही बैठे महराज जी बोले, आज एक महात्मा आ रहे हैं, बहुत अच्छे। थोड़ी ही देर में एक सनकी सा दिखने वाला, हाफ पैन्ट सा कुछ पहने हुये, अटपटा सा, छोटे कद का, हल्के (बालकों जैसे) शरीर का आदमी आया। महराज जी बोले, यही हैं। उन्हें बड़े आदर से महराज जी ने रखा। यहाँ तक कि रात में अपने आसन पर उन्हें सुलाया और स्वयं अलग सोये। सबेरे जब वह महात्मा जंगल की ओर गये, तो बोले, यह जंगल कटेगा, गायें होंगी भैंसे होंगी। उसके कुछ ही समय बाद अनसूया का फार्म बना, गायें–भैंसें भी बहुत हो गयीं। कहने का मतलब कि इस स्तर के महात्माओं के लिये भूत भविष्य का कोई अन्तराल नहीं रहता। उनका भीतर का कम्युनिकेशन इतना व्यवस्थित हो चुका होता है कि सब स्पष्ट रहता है। ऐसे ही एक महात्मा रहे, उन्होंने एक चेला बनाया। गुरू बाबा ध्यान में बैठे रहे, वह चेला सेवा में लगा रहा। एक सेठ भी शिष्य था महात्मा जी का। उसका व्यापार विदेशों से होता था। बड़ी–बड़ी नौकाओं में बैठ कर कहीं जा रहा था। उसका बेड़ा समुद्री तूफान में फंस गया। तो गुरु बाबा को स्मरण किया, कि गुरु बाबा बचाइये–बचाइये। इधर गुरु बाबा तो ध्यान में बैठे रहे। और जो चेला बाहर सेवा में लगा रहा, उसको सेठ के संकल्प मिल गये । चेला को पहले मिल गए। इतने में गुरु बाबा आए। चेला बोला– गुरू बाबा, आप साधना करते रहिए, मैंने सब ठीक कर दिया है। अब उसकी नौका नहीं डूबेगी। तो गुरू बाबा ने कहा, अरे! तुझे कैसे पता चल गया? हमारे नाभि की बात तुम कैसे जान गए? तो फिर नाभि से नाभा–नाभा। उस साधक का नाम नाभा हो गया। वह बहुत अच्छे

महात्मा हुए–नाभादास। जब उसके गुरू बाबा न रह गए, तो उन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया। सबको भोजन कराया। तुलसीदास उस समय थे। तो इनको भी न्योता दिया। तुलसी दास ने सोचा, रहने दो–कौन जाय? सम्मान सहित ले जायं, तो जाना चाहिए। नहीं ले गए तो नहीं गये। तो फिर नाराज हो गये, नाभादास। तुलसीदास को उनकी नाराजगी का पता लग गया, तो फिर भागे–भागे गए। जहां मंगतों की पंगत लगी थी, उसी में घुस कर बैठ गये। और पत्तल नहीं थी, तो जूती में लेकर खाने बैठ गये। फिर नाभादास को इस बात का पता चला, तो आए और उठाकर ले गए। फिर सम्मान के साथ ढंग से बैठाया। ऐसी है यह महात्माओं की दुनिया। अन्दर ही अन्दर आदान–प्रदान हो जाता है।

तो आध्यात्मिक विषय अन्दर का है। बाहर हम खूब पूजा पाठ करते रहें, और मन में वही सब बुराइयां भरी रहें, तो क्या लाभ हुआ? हमारे अन्दर सुधार हो, दैवी सम्पत्तियों का विकास हो, अन्दर से अनुभूतियां मिलने लगें, तब कुछ मतलब हुआ साधन–भजन का। साधन–भजन तो बड़ा प्रेक्टिकल मार्ग है।

पुराने ऋषि मुनि जिसके लिये भजन करते थे, उसे वे शान्ति कहते थे–आज भी लोग सत्संग भजन, कीर्तन, ध्यान, योग जो भी करते हैं, रिलैक्स (तनावमुक्त) होने के लिए। यह रिलैक्स और शान्ति एक ही बात है। हमारा चित्त अनेक–अनेक चिंतनों में, दुनिया के जंजालों में चतुर्दिक फंसा रहता है, तनाव ग्रस्त हो जाता है। जब हम थोड़ी देर के लिये उसे सारे चिंतनों से मुक्त करते हैं, मन को एक नाम में, इष्ट के ध्यान में लगा देते हैं, उसकी दौड़ बन्द हो जाती है। इसी अवस्था को शान्ति कहते हैं। इसे हर आदमी चाहे तो कर सकता है। थोड़ा–थोड़ा साधन की पूँजी बढ़ती जाए तो एक दिन अपने पास क्षमता आ जाती है। आज एक तरफ से बस पैसे के पीछे दौड़ रहा है आदमी। पैसा–पैसा, अरे भाई! क्या होगा पैसे से? सुख और शान्ति के लिये पैसा के पीछे दौड़ लगी है। अरे! किसी पैसे वाले से – करोड़पति से पूछा जाय, क्या वह सुखी है? पैसे में सुख नहीं है। शान्ति तो पैसे वालों से कोसों दूर रहती है।

बाहर कहीं भी सुख शान्ति नहीं है। चित्त का शान्त होना ही शान्ति है। अन्दर की बात है। जैसे भी हो मन शान्त हो, उसकी दौड़ रुके। यह तब होता है, जब बाहर की दौड़ खत्म हो। अपने अन्दर स्थिर होना सीखें। बाहरी दुनिया का आकर्षण झूठा है। जैसे मरूस्थल में पानी या सीपी में चांदी दिखती है, वैसे ही बाहर सुख दिखता है। मिथ्या को भी सत्य मानने की परवशता है जीव की, भ्रम वश–

''रजत सीप महं भास जिमि, यथा भानुकर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोई, भ्रम न सकै कोउ टारि।''

तो भाई अध्यात्म विद्या इसी भ्रम का निवारण करके, यथार्थ–बोध कराती है। लेकिन इसके लिए भी किसी स्कूल में एडमीशन लेना होगा, किसी सतगुरू की शरण लेनी होगी। और साधना का कोर्स पूरा करना होगा।

मन को मानस कहते हैं–मन जब अन्तर्मुखी हो जाय, तब उसे मानस कहते हैं। मन जब माया उन्मुखता छोड़ दे और ईश्वर उन्मुख हो जाय, तब यह मानस कहलाता है। यह मानसरोवर कहलाता है। इसमें फिर हंस आकर क्रीड़ा करते हैं। कहा जाता है कि हंस मानसरोवर में रहते हैं। ऐसा कुछ हंस वगैरह वहाँ हैं नहीं, लेकिन यह समझाने का ऐसा

तरीका बनाया गया है। यहां बात तो इस मन–मानस की है। यहां तो जो हंस रहते हैं वे अलग हैं। गोस्वामी जी बताते हैं, लेकिन लोग समझते नहीं। लिखा है–

सुकृति पुंजमंजुलअलि माला ।
ज्ञान विराग विवेक मराला ।।

ज्ञान, वैराग्य, विवेक ये हंस हैं। जो साधक के मानस में रहते हैं। इस तरह से ये सब अन्दर की बातें हैं। इन्हें न पकड़ पाने सेलोग बाहर मानसरोवर की यात्रा कर रहे हैं। ऐसा यह भटकाव बाहरी समाज में हो जाता है, लोग गलत रास्ता पकड़ लेते हैं। यह रामायण की कथा एक प्रवाह है–साधना की गति है,साधक के मन में भजन साधन की क्रिया का आगे चलते जाना है। हमारा मन जब मानस बन जाता है–मन में ईश्वर की धारणा बन जाती है तब फिर यह साधना का क्रम चल पडता है। फिर यह प्रवाह चलते–चलते परमात्म स्वरूप में समाहित होकर ही समाप्त होता है–

त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी।
राम सरूप सिंधु समुहानी।।

और यहाँ घाट मनोहर चार हैं। चार जगह यह कथा होती है। ऐसे तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह अन्तःकरण चतुष्टय ही मानस के चार घाट हैं, पर गोस्वामी जी ने चार संवादों को चार घाट कहा है–

सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि विचारि ।
तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि।।

एक तो याग्यवल्क्य जी भरद्वाज के प्रति कहते हैं। दूसरे शंकर जी पार्वती से कहते हैं, तीसरे कागभुसुण्डि गरूड़ से और तुलसीदास सबके प्रति कहते हैं। लेकिन इसका मतलब अलग है, जो साधक को लेना है। भजन ही भरद्वाज है, जानकारी जाग्यवल्क्य है, संत शंकर है, प्रेम ही पार्वती है, कांक्षा ही कागभुसुंडि है। तो अगर तुमसे भजन बन जाय, तो यही भजन रूपी भरद्वाज, बरबस जानकारी (जाग्यवल्क्य) को प्राप्त कर लेगा। अगर तुम्हारे अन्दर प्रेम आ जाय, तो वह प्रेम रूपी पार्वती, संत–शंकर से मानस की सब जानकारी ले लेगा। और अगर गो नाम इंद्रियों के मूल, इस गरुण (मन) में श्रद्धा तैयार हो जाय, तो जो कांक्षा रूप कागभुसुंडि है – संसारी आकांक्षाओं से परे हो जाती है जो वृत्ति – वह फिर मन को सब बता सकता है। गरुण को बता सकता है। और गोस्वामी जी, जो साधक के हृदय में इष्टदेव हैं, जो करने कराने वाला है–वह अपने अवयवों को बताता है। अगर सही पात्र हो जाय तो, और नहीं तो–

जे श्रद्धा संबल रहित, नहि संतन कर साथ ।
तिन कहुं मानस अगम अति, जिनहिं न प्रिय रघुनाथ।।

मन में ईश्वर के लिए अनुराग हो, श्रद्धा विश्वास हो और संत सदगुरु का सान्निध्य मिले तब मानस सुगम हो सकता है। अन्यथा तो अति अगम है। इस तरह से यह मानस बहुत विस्तृत और बारीक है। मानस एक समझ है, एक थ्योरी (सिद्धांत) है। एक सिद्धान्त है। एक दर्शन है। हम क्या हैं, ईश्वर क्या है, संसार क्या है। इनकी एडजस्टिंग कैसे होती है? यह सब है इसमें। इसलिए इसका अध्ययन–विश्लेषण सही तरीके से होना चाहिए।

संसार भी गल जाय, हम भी गल जायं, शरीर भी गल जाय और सब एक हो जायं। वह तरीका है इसमें। इसमें, सबकी समझ काम नहीं करती। कहाँ किस कोने में कैसी एडजस्टिंग करें, यह मानस का रहस्य है। यह मन का रहस्य है। इसलिए मानस मूल है। जिसका मानस संतुलन बना और एडजस्टिंग हुई, और मन का ट्रांसफार्म (बदलाव) हुआ, तो वह ईश्वर की अनुभूति प्राप्त कर सकता है–ऐसा परिणाम मान लिया गया।

गोस्वामी जी विनय में कहते हैं–

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परमसुख अतिशय द्वैत वियोगी।।

जो ऐसा कर सके वही ईश्वर की अनुभूति कर सकता है। सकल दृश्य निज उदर मेलि–सारा दृश्य जगत अपने अन्दर ले लो। अरे! एक छोटा सा पत्थर अगर शरीर के अन्दर चला जाय, तो हम ज़िंदा नहीं रह सकते–कैसे सारा जगत अंदर लेंगे–आखिर गोस्वामी जी कहना क्या चाहते हैं? क्या तरीका है उनका कहने का? लेकिन वे ठीक कहते हैं–अब हम सुनने वालों को थोड़ा बारीक बनना पड़ेगा। दृश्य को कौन धारण किये है? हमारा मन। तो द्रष्टा को अगर पकड़ लिया जाय, तो दृश्य पीछे चला न आयेगा? यह तो तीनों कालों में है नहीं। द्रष्टा ही द्रष्टा है। द्रष्टा दृश्य में अनुगत है, और दृश्य, द्रष्टा में अनुगत होता नहीं। इसलिए इस सिद्धान्त के अनुसार, जब दृश्य, द्रष्टा में अनुगत हो जाता है तब दृश्य, दृश्य का स्वरूप त्याग कर, द्रष्टा ही बन जाता है। इसलिए अन्ततः द्रष्टा ही द्रष्टा है। दृश्य तो मन में ही है। जैसा कि विनय में कहा गया है–

असन बसन पशु वस्तु विविध विधि सब मनि महं रह जैसे।
सरग नरक चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे।
विटप मध्य पुतरिका सूत मह कंचुकि बिनहिं बनाये।
मन मह तथा लीन नाना तनु प्रगटत अवसर पाये।

इस प्रकार यही मन दृश्य है। इसलिए इसको अगर अंदर कर लिया जाय, उदर में कैच (पकड़ना) किया जाय, गुरु के चरणों में लिपटा दिया जाय,तो आ जायगा पूरा दृश्य अन्दर। फिर कुछ बाधा नहीं रह जाती–मूंदहु आंख कतहुं कछु नाहीं। यह तो मन की भावना है –संसार। और अगर मन भगवान में लीन हो जाय, तो क्या यह संसार रह जायगा कहीं? इस तरीके से –'सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि योगी।' अब वह इस संसार रुपी निद्रा का सदैव के लिए त्याग करके, ईश्वर में हमेशा–हमेशा के लिए सो जाता है। ईश्वरमय हो जाता है–

'सोइ हरिपद अनुभवै परमसुख अतिशय द्वैत वियोगी।।'

वह फिर भगवान के पद की अनुभूति कर सकता है। वह उस पद को–परमसुख को अनुभव कर सकता है। यह है महात्माओं का विज्ञान। यही कल्याण का मार्ग है।

हरिः ओम